

शिक्षा की पहुंच एक शोचनीय विषय

अनुपम पचौरी

शिक्षा का अधिकार कानून बने आधा दशक से ऊपर बीत चुका है। आमतौर पर भी सरकारों की ओर से कोई कानून पारित हो जाने के बाद उस कानून की पहुंच, उसे लागू करने के लिए नीति का गठन, नीतियों के क्रियान्वयन के लिए आवंटित धन, निर्देशों, ढांचों और लाभान्वितों की समीक्षा की कोई तय नीति नहीं है। क्योंकि कानून है और उसके उलंघन पर प्रभावित पक्ष न्यायालय तक जा सकते हैं, यह मान लिया जाता है कि सब कुछ ठीक काम कर रहा है। हालांकि शिक्षा का अधिकार कानून के तहत केंद्र सरकार द्वारा बनाई गई गाइडलाइन्स के संदर्भ में कंप्लायन्स की समीक्षा होती है तब भी केवल अलग अलग मापदंडों पर कंप्लायन्स का प्रतिशत आंकने से अधिक दूर यह प्रक्रिया अभी नहीं पहुंच सकी है। अन्य कई योजनाओं के संदर्भ में कहा जा सकता है कि कई बार सरकारें अपने कार्य की समीक्षा काफी सहृदय हो कर करती हैं जिसमें कार्य के विस्तार और रुकावटों का तो जिक्र होता है, आंकड़े प्रस्तुत किए जाते हैं किन्तु विभिन्न नीतियों के आपस में टकराव, ढांचों और क्रियान्वयन की समीक्षा के अभाव में कार्य को सही दिशा नहीं मिल पाती है। अपने वर्तमान स्वरूप में भी यह कानून काफी सीमित ही है किन्तु समय-समय पर सरकारों के अलावा शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रही संस्थाओं, शिक्षाविदों और समूहों द्वारा भी इस कानून के क्रियान्वयन की समीक्षा बहुत जरूरी है।

अजीत फाउंडेशन द्वारा 2015 में शिक्षा का अधिकार थीम पर आयोजित एक विमर्श सभा (कंसल्टेशन) में प्रस्तुत किए गए पत्रों में से सात पत्रों और रिपोर्ट का एक संकलन हाल ही में पढ़ने को मिला है। संकलन की खास बात यह है कि अधिकतर पत्र राजस्थान के संदर्भ में प्रस्तुत किए हैं जो खासतौर पर उन शोधार्थियों, नीति निर्माताओं और नीति एक्टर्स के लिए उपयोगी होंगे जो राजस्थान में या यहां की शिक्षा और व्यवस्था से मिलते जुलते परिवेश में काम कर रहे हैं। हालांकि पत्रों में कहे गए बहुत से बिंदु भारत में प्रारंभिक शिक्षा व्यवस्था और उसके प्रबंधन से जुड़े मसले हैं जिनका असर किसी भी राज्य में देखने को मिल सकता है।

शोभिता राजगोपाल का पत्रा राजस्थान में प्रारंभिक शिक्षा की वर्तमान वस्तुस्थिति का विश्लेषण करता हुआ शिक्षक, स्कूल से दूरी, स्कूली व्यवस्थाओं, गुणवत्ता के मानकों, सीखने के मूल्यांकन आदि कई मुद्दों और समस्याओं की चर्चा करता है जिनपर 'शिक्षा का अधिकार' हासिल करने के लिए ध्यान दिए जाने की जरूरत है। राजस्थान में अगस्त 2014 में लगभग 17,000 विद्यालय अन्य विद्यालयों के साथ मिला दिए गए थे। इस बड़े पैमाने पर विद्यालयों के बंद होने के कारण हाशिए के समुदायों से आने वाले बहुत से बच्चे स्कूल से वंचित हो गए हैं। एक अध्ययन का हवाला देते हुए शोभिता का आलेख बताता है कि आस-पास के सरकारी स्कूलों के बंद हो जाने के कारण दलित बच्चों की शिक्षा तक पहुंच पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। शिक्षकों की कमी,

जिसमें भर्ती और उनके स्थान (प्लेसमेंट) की समस्या एक ऐसा मुद्दा है जिससे प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक पूरा तंत्र त्रस्त है और जो शिक्षा की पहुंच और उसकी गुणवत्ता के मार्ग में सबसे बड़ी अड़चन सिद्ध हो रहा है। राज्य सरकारें शिक्षकों के सामान्यीकरण की हर साल पहल करती रही हैं। लेकिन यह समझने वाली बात है कि जब तक एक बड़े पैमाने पर शिक्षकों की कमी रहेगी तब तक हाशिये पर समुदायों और दूरवर्ती इलाकों के बच्चों के लिए शिक्षकों की उपलब्धता की समस्या का कभी निश्चित हल नहीं निकल सकता। शिक्षकों के अभाव में राज्य किस प्रकार शिक्षा के अधिकार तक सभी बच्चों की पहुंच बना पाएंगे यह एक शोचनीय विषय है।

इसी कड़ी में बच्चों की सीखने और सीखने के सतत मूल्यांकन के आस-पास शिक्षकों और शिक्षा तंत्र को चलाने वालों की समझ में टकरावों को लेकर बड़ी खाई है। सतत मूल्यांकन क्या है, इसकी जरूरत क्यों है और वार्षिक परीक्षा के द्वारा छात्रों को उत्तीर्ण-अनुत्तीर्ण करने में सीखने की समझ से यह कैसे अलग है, और इसे कैसे करें, इन बिन्दुओं पर भी शिक्षकों के बीच समझ में अंतर है। इसका एक कारण शिक्षक शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों में सतत मूल्यांकन की संकल्पना और उसके शिक्षाशास्त्रीय महत्त्व को पर्याप्त रूप से शामिल न किया जाना भी है। साथ ही बच्चों की संख्या की दृष्टि से, बड़ी कक्षाओं में शिक्षक सतत मूल्यांकन कैसे करें इस पर भी बहस छेड़े जाने की जरूरत है क्योंकि इसी बहस से शिक्षकों की कमी का मुद्दा और उसे पूरा करने की शिक्षकों के बीच से मांग उठाने का रास्ता भी खुलता है। हालांकि शिक्षाशास्त्र को शिक्षक आन्दोलन से जोड़कर इस संकलन के किसी आलेख में बात नहीं की गई है।

शिक्षकों से पूरे तंत्र की उम्मीदों, शिक्षकों की जवाबदेही और उनके कार्यभार की स्थिति की जटिलता और शिक्षक अभिप्रेरणा का विश्लेषण नीरजा राघवन का आलेख शिक्षा के अधिकार के संदर्भ में मास्लो और रॉजर के सिद्धांतों और कुछ शोध अध्ययनों के हवाले से करता है। शिक्षकों की पेशेगत अपेक्षाओं से पहले उनकी पेशेवर मान्यता और उसकी तैयारी के सतत प्रयासों की आवश्यकता है। जिसमें शिक्षकों द्वारा अपनी ही कक्षा में बच्चों के सीखने की समस्याओं और उनके निवारण के लिए किए गए प्रयासों पर शोध (एक्शन रिसर्च) और विभिन्न समूहों के बच्चों को पढ़ाते हुए उनके मन में उपजते सवालों पर समझ विस्तृत करने हेतु मंचों की आवश्यकता उल्लेखनीय हैं।

विश्वंभर का आलेख आंकड़ों की पर्याप्त उपलब्धता के अभाव और उपलब्ध आंकड़ों के सत्यापन की समस्या को व्यक्त करते हुए 2009-10 और 2014-15 के आंकड़ों का तुलनात्मक विश्लेषण करता है। आलेख में तालिका 1 दर्शाती है कि शिक्षा का अधिकार लागू होने के 5 साल के भीतर निजी विद्यालयों की संख्या में 29.37 प्रतिशत वृद्धि हुई है। नामांकन में आई कमी के कारण कई हो सकते हैं और इनका सही आकलन नहीं किया जा सका है। एक कारण जिसकी तरफ शोभिता ने अपने पर्व में इशारा किया है, वह सामान्य वर्ग के बच्चों के सरकारी स्कूलों में नामांकन में कमी। यानी सामान्य वर्ग के बच्चों का निजी विद्यालयों की ओर पलायन। दूसरा कारण जनसंख्या में प्रारंभिक विद्यालयों में प्रवेश पाने की उम्र के बच्चों की संख्या में कमी भी हो सकता है जिसकी चर्चा गणेश निगम ने अपने लेख में की है।

इसके साथ ही विश्वंभर ने शिक्षा के अधिकार कानून के क्रियान्वयन की समीक्षा और उसकी अनुपालना से संबंधित राज्य द्वारा स्थापित संरचनाओं की वस्तुस्थिति का आकलन किया है। राष्ट्रीय एवं राज्य के स्तर पर गठित बाल अधिकार संरक्षण आयोगों में लम्बे समय तक पदों का रिक्त रहना, जिला स्तर पर गठित शिक्षा संवाद समितियों की नियमित बैठक न होना ही सूचक है कि बच्चों के अधिकारों और खास तौर पर शिक्षा के अधिकार को राज्य कितनी गंभीरता से लेता है।

बाल श्रम कानून हमेशा से बच्चों की शिक्षा के सरोकारों के साथ हाथ मिला कर नहीं चल सका है। राजस्थान में ईट भट्टों में काम करने वाले प्रवासी मजदूरों के बच्चों की शिक्षा से दूरी और शिक्षा के अधिकार कानून से संबंधित सूचनाओं के अभाव, व्यवस्थाओं की शिथिलता और स्कूलों में शिक्षकों की अनुपस्थिति तथा स्कूली सुविधाओं की कमी के कारण

इस दूरी को तय करने में आने वाली बाधाओं की चर्चा अमित कुमार के आलेख में की गई है। इस तरह की परिस्थितियों में काम करने वाले प्रवासी मजदूरों के बच्चों के लिए शिक्षा व्यवस्था के अभाव में, शुरू में बच्चे माता-पिता और परिवार की मदद करते हुए मजदूरी की ओर धकेल दिए जाते हैं। ध्यातव्य है कि हाल ही में भारतीय संसद ने बाल श्रम कानून में संशोधन पारित किया है, जिसके बाद शिक्षा के अधिकार के लिए काम कर रहे समूहों और शिक्षाविदों द्वारा चिंता जाहिर की जा रही है कि बहुत से गरीब परिवारों और विषम परिस्थितियों में पड़े परिवारों के बच्चे घरेलू काम-काज में खींच लिए जाएंगे और शिक्षा के अधिकार से वंचित रह जाएंगे।

शिक्षा का अधिकार कानून में ही नहीं, शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले गुटों, अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों और समय-समय पर शिक्षा और विकास के लिए चिंतित सरकारों और शिक्षा नीतियों ने समुदाय की सहभागिता को अपरिहार्य माना है। लेकिन समुदाय कोई स्थाई अवधारणा नहीं है। संगठनों और समूहों की पहचान तथा सरोकार बदलते हैं और इसलिए समुदाय तरल अवधारणा है। साथ ही पहचानों और सरोकारों का संसाधनों पर वर्चस्व के लिए लगातार टकराव भी होता रहता है। जाति समूहों में बंटे भारतीय समाज में तो खास तौर पर पहचान और सरोकारों की जद्दोजहद जाहिर है। इसी के चलते शिक्षा ही नहीं, अन्य संसाधनों पर भी कुछ समूह काबिज रहे हैं और अधिकतर वंचित रहे हैं। अतः समुदाय की जनतांत्रिक परिकल्पना और वास्तविकता के बीच बहुत बड़ा अंतर है। राजाराम भादू का आलेख 'सामुदायिक सहभागिता और शिक्षा' समुदाय की अवधारणाओं की विवेचना करता हुआ, ग्रामीण संदर्भों में समुदाय की परतों और शिक्षा में सामुदायिक सहभागिता के अर्थ, समस्याओं और सम्भावनाओं पर चर्चा करता है।

अंततः कुछ विचारणीय प्रश्न भी हैं कि शिक्षा क्यों और शिक्षा है क्या? इसमें क्या-क्या शामिल किया जाए? शिक्षा में गुणवत्ता के मायने क्या हैं? और क्या शिक्षा सबके लिए जरूरी है? दर असल ये सवाल शुरुआत में पूछे जाने चाहिए। हृदयकान्त दीवान का आलेख इन्हीं सवालों पर आधारित है। यदि समाज और समुदाय की समझ को सीखना, उसे आगे ले जाना शिक्षा है तो जाति और अन्य समूहों में बंटे भारतीय समाज के संदर्भ में शिक्षा की अवधारणा और उसके उद्देश्य क्या होंगे? भारतीय संविधान की प्रस्तावना जिस जनतांत्रिक, समतामूलक समाज की संकल्पना है यदि वह हमें शिक्षा क्या है या क्या हो तय करने में दिशा दे तो समुदायों और समूहों की विविधता के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा क्या हो और कैसी हो तय करना होगा। शिक्षा के अधिकार को केवल नियमों और कानूनों के बलबूते अमल में नहीं लाया जा सकता। इसके लिए समझ और सहमति बनानी होगी और यह एक सतत प्रक्रिया है।

अवधारणाओं पर सवाल उठाना, वाद विवाद पर आधारित सतत विमर्श और संवाद ही वो रास्ता है जो शिक्षा के अधिकार को अमली जामा पहना सकता है। अजित फाउंडेशन द्वारा आयोजित कंसल्टेशन और इस संकलन को इसी कड़ी में पढ़े जाने की जरूरत है। शिक्षा के निजीकरण, उसके प्रभावों व शिक्षा अधिकार कानून के संदर्भ में शिक्षक यूनियनों की भूमिका पर शिक्षकों के आलेख इस संकलन को और सुदृढ़ बना सकते थे। इस संकलन में कुल सात आलेखों में से 2 हिन्दी और 5 अंग्रेजी में हैं। अंग्रेजी के लेखों को हिन्दी में व हिन्दी के लेखों को अंग्रेजी में अनुदित किया गया होता तो एक अच्छे द्विभाषी संकलन का लाभ पाठकों को मिल सकता था। ◆

लेखिका परिचय : ससेक्स विश्वविद्यालय से पीएचडी के बाद NUEPA के सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च इन हायर एजुकेशन में एसिस्टेंट प्रोफेसर हैं।



राइट टु एजुकेशन: द नेक्स्ट फेज: पेपर्स एंड प्रोसीडिंग्स ऑफ अ कंसल्टेशन

संपादन: वी. एस. व्यास और अंजू ढड्डा मिश्रा

प्रकाशक: अजित फाउंडेशन

संस्करण: 2016

मूल्य: 300 रुपये